सुसंगठित साधनोंद्वारा दूसरोंकी स्वाभाविक उन्नतिके मार्गमें रोड़े अटकाकर उन्हें गिराने और पददलित करनेकी घृणित चेष्टा कर रहे हैं। दम्भपूर्ण आसुरी सम्पत्तिका विकास हो चला है। विषयासक्ति और कामनाने मनुष्यके ज्ञानको ढककर उसे अपने मनुष्यत्वके पदसे गिरानेका प्रयत्न आरम्भ कर दिया है। सभ्यताकी बाह्य सुन्दरतासे दम्भ, व्यभिचार, मिथ्या अभिमान और हिंसा-प्रतिहिंसा आदि दुर्गुण उत्पन्न होकर क्रमशः उद्धत हो जगत्‌की मनुष्य-जातिको आध्यात्मिक आत्महत्या करनेके लिये प्रोत्साहित कर रहे हैं। सर्वव्यापी, सर्वप्रिय, सर्वमय और सर्वधन परमात्माका आसन छोटा करके उसे एक छोटी-सी संकुचित सीमाके अन्दर रखनेकी व्यर्थ चेष्टा करके, एक धर्मनामधारी दूसरे प्रतिपक्षी धर्मनामधारीके उस धर्मके नामका नाशकर अपने धर्मके नामकी निरर्थक उन्नति करना चाहता है।

धर्मके नामपर आज ढोंग और दम्भका पार नहीं रहा है। परमात्माको, उसके नामको और उसके दिव्य धर्मको भुलाकर जगत् आज ऊपरकी बातोंमें ही लड़ रहा है। इसीलिये न तो आज धर्मकी उन्नति होती है और न कोई सुखका साधन ही दीखता है। लोग समझते हैं कि

ईश्वर केवल उनके निर्देश किये हुए स्थान और नियमोंमें ही आबद्ध है, अन्य सब जगह तो उसका अभाव ही है !

ऐसी स्थितिमें मनुष्य-जातिके कल्याणके लिये कुछ ऐसी बातें होनी चाहिये जिनपर अमल करनेसे सबका कल्याण हो सकता हो। इसी उद्देश्यकी पूर्तिके लिये निम्न-लिखित सात बातें "दिव्य सन्देश" के रूपमें आपलोगोंके सम्मुख रक्खी जाती हैं। इनका पालन ईश्वरवादीमात्र कर सकते हैं और यह जोरके साथ कहा जा सकता है कि इनका पालन करनेसे उनका परम कल्याण होनेमें कोई सन्देह नहीं है।

सात बातें

१—ईश्वरके नामका जप, स्मरण और कीर्तन करना चाहिये।

२—ईश्वरके नामका सहारा लेकर पाप नहीं करना चाहिये। जो लोग ईश्वरके नामकी ओटमें पाप करते हैं वे बड़ा अपराध करते हैं।

३—(क) ईश्वरके नामका साधनकर उसके बदलेमें संसारके भोगोंकी कामना नहीं करनी चाहिये।

(ख) ईश्वरके नामसाधनरूपी धनका उपयोग पापनाशके कार्यमें भी नहीं करना चाहिये ।

४—ईश्वरके नामको परमप्रिय मानकर उसका उपयोग उसीके लिये करना चाहिये ।

५—दम्भ नहीं करना चाहिये । दम्भसे भगवान् अप्रसन्न होते हैं । दाम्भिककी बुरी गति होती है ।

६—सच्चे ईश्वरभक्त, सदाचारपरायण, कर्तव्यशील होनेके लिये गीताधर्मका आश्रय लेना चाहिये ।

७—दूसरेके धर्मकी निन्दा या तिरस्कार नहीं करना चाहिये । ऐसे झगड़ोंसे सच्चे सुखके साधकको बड़ा नुकसान होता है ।

अब इन सातों बातोंका अलग-अलग विवेचन किया जाता है—

(१) जगत्के ईश्वरवादीमात्र ईश्वरके नामको मानते हैं । भगवान्के नामसे उसके स्वरूपकी, गुणोंकी, महिमाकी, दयाकी और प्रेमकी स्मृति होती है । जैसे सूर्यके उदयमात्रसे जगत्के सारे अन्धकारका नाश हो जाता

है, वैसे ही भगवन्नामके स्मरण और कीर्तनमात्रसे ही समस्त दुर्गुण और पापोंका समूह तत्काल नष्ट हो जाता है। जिनके यहाँ परमात्मा जिस नामसे पुकारा जाता है वे उसी नामको ग्रहण करें, इसमें कोई आपत्ति नहीं।

(२) परन्तु परमात्माका नाम लेनेमें लोग कई जगह बड़ी भूल कर बैठते हैं। भोगासक्ति और अज्ञानसे उनको ऐसी समझ हो जाती है कि हम भगवन्नामका साधन करते ही हैं और नामसे पाप नाश होता ही है, इसलिये पाप करनेमें कोई आपत्ति नहीं है। यों समझकर वे पापों-का छोड़ना तो दूर रहा, भगवान्‌के नामकी ओट या उसका सहारा लेकर पाप करने लगते हैं। एक मुकद्दमेबाज एक नामप्रेमी भक्तको गवाह बनाकर अदालतमें ले गया, उससे कहा कि "देखो, मैं जो कुछ तुमसे कहूँ, हाकिमके पूछनेपर वही बात कह देना।" गवाहने समझा कि यह मुझसे सच्ची ही बात कहनेको कहेगा, पर उसकी बात सुननेपर पता लगा कि वह झूठ कहलाना चाहता है; इससे उसने कहा कि "भाई, मैं झूठी गवाही नहीं दूँगा।" मुकद्दमेबाजने कहा कि "इसमें आपत्ति ही कौन-सी है? क्या तुम नहीं जानते कि भगवान्‌के नामसे पापोंका नाश होता है। तुम तो नित्य भगवान्‌का नाम लेते ही हो,

भक्त हो, जरा-सा झूठसे क्या बिगड़ेगा ? एक ईश्वरके नाममें पाप-नाशकी जितनी शक्ति है उतनी मनुष्यमें पाप करनेकी नहीं है। मैं तो काम पड़नेपर यों ही कर लिया करता हूँ।" उसने कहा, "भाई, मुझसे यह काम नहीं होगा, तुम करते हो तो तुम्हारी मर्जी।" मतलब यह कि इस प्रकार परमात्माके नाम या उसकी प्रार्थनाके भरोसे जो लोग पापको आश्रय देते हैं वे बड़ा अपराध करते हैं। वे तो पाप करनेमें भगवान्‌के नामको साधन बनाते हैं, नाम देकर बदलेमें पाप खरीदना चाहते हैं। ऐसे लोगों-की दुर्गति नहीं होगी तो और किसकी होगी ?

(३)(क) कुछ लोग जो संसारके पदार्थोंकी कामना-वाले हैं वे भी बड़ी भूल करते हैं। वे भगवान्‌का नाम लेकर उसके बदलेमें भगवान्‌से धन-सम्पत्ति, पुत्र-परिवार, मान-बड़ाई आदि चाहते हैं। वास्तवमें वे भी भगवन्नामका माहात्म्य नहीं जानते। जिस भगवन्नामके प्रतापसे उस राजराजेश्वरके अखण्ड राज्यका एकाधिपत्य मिलता हो, उस नामको क्षणभङ्गुर और अनित्य तुच्छ भोगोंकी प्राप्तिके कार्यमें खो देना मूर्खता नहीं तो क्या है ? संसारके भोग आने और जानेवाले हैं, सदा ठहरते नहीं। प्रत्येक भोग दुःखमिश्रित है। ऐसे भोगोंके आने-जानेमें वास्तवमें लाभ-हानि ही क्या है ?

(३) जो लोग यह समझकर नाम लेते हैं कि इसके लेनेसे हमारे पाप नाश हो जायँगे वे भी विशेष बुद्धिमान् नहीं हैं। क्योंकि पापोंका नाश तो पापोंके फलभोगसे भी हो सकता है। जिस ईश्वरके नामसे वह प्रियतम परमात्मा प्रसन्न होता है, जो नाम प्रियतमकी प्रीतिका निदर्शन है, उसे पाप नाश करनेमें लगाना क्या भूल नहीं है? वास्तवमें ऐसा करनेवाले भगवन्नामका पूरा माहात्म्य नहीं जानते, क्या सूर्यको कहना पड़ता है कि तुम अँधेरेका नाश कर दो। उसके उदय होनेपर तो अन्धकारके लिये कोई स्थान ही नहीं रह जाता।

(४) भगवान्‌का नाम भगवद्-प्रेमके लिये ही लेना चाहिये। भगवान् मिलें या न मिलें, परन्तु उनके नामकी विस्मृति न हो। प्रेमी अपने प्रेमीके मिलनेसे इतना प्रसन्न नहीं होता जितना उसकी नित्य स्मृतिसे होता है। यदि उसके मिल जानेपर कहीं उसकी स्मृति छूट जाती हो तो वह यही चाहेगा कि ईश्वर भले ही न मिले परन्तु उसकी स्मृति उत्तरोत्तर बढ़े, उसका नाश न हो। यही विशुद्ध प्रेम है!

(५) नामसाधनमें कहीं कृत्रिमता न आ जाय। वास्तवमें आजकल जगत्‌में दिखावटी धर्म—'दम्भ' बहुत

बढ़ गया है। बड़े-बड़े धर्मके उपदेशक न मालूम किस सांसारिक स्वार्थको लेकर कौन-सी बात कहते हैं, इस बात-का पता लगाना कठिन हो जाता है। इस दम्भके दोषसे सबको बचना चाहिये। दम्भ कहते हैं बगुला-भक्तिको। अन्दर जो बात न हो और ऊपरसे मान-बड़ाई प्राप्त करने या किसी कार्यविशेषकी सिद्धिके लिये दिखलायी जाय वही दम्भ है। दम्भी मनुष्य भगवान्‌को धोखा देनेका व्यर्थ प्रयत्नकर स्वयं बड़ा धोखा खाता है। भगवान् तो सर्वदर्शी होनेसे धोखा खाते नहीं, वह धूर्त जो जगत्‌को भुलावेमें डालकर अपना मतलब सिद्ध करना चाहता है स्वयं गिर जाता है। पाप उसके चिरसङ्गी बन जाते हैं। पापोंसे उसकी घृणा निकल जाती है। ऐसे मनुष्यको धर्मका परम तत्त्व जिसे परमात्माका मिलन कहते हैं, कैसे प्राप्त हो सकता है? अतएव इस भयंकर दोषसे सर्वथा बचना चाहिये।

(६) इन सब बातोंको जानकर ईश्वरका तत्त्व समझने और तदनुसार जगत्‌में कर्म करनेके लिये राह बतलानेवाला कोई सार्वभौम ग्रन्थ चाहिये या ऐसा कोई उपादेय सिद्ध मार्ग चाहिये जिसपर आरूढ़ होते ही ठीक ठिकानेसे अपने लक्ष्यतक पहुँचा जा सके। हिन्दुओंकी

दृष्टिसे ऐसे चार ग्रन्थोंके नाम बतलाये जा सकते हैं जो कल्याणके मार्गदर्शकका बड़ा अच्छा काम दे सकते हैं। (१) उपनिषद् (२) श्रीमद्भगवद्गीता (३) भागवत और (४) तुलसीदासजीका रामचरितमानस। (उपनिषदोंमें प्रधानतः ईश, केन आदि दस उपनिषदोंको समझना चाहिये।) ये ऐसे ग्रन्थ हैं कि जो मनुष्यमात्रको असली लक्ष्यतक पहुँचा सकते हैं। उपनिषदोंकी और गीताकी प्रशंसा आज सारा जगत् कर रहा है। पाश्चात्य जगत्के भी बड़े-बड़े तत्त्वज्ञ विद्वानोंने उपनिषद् और गीताधर्मको सार्वभौम धर्म माना है। यदि इन चारोंका अध्ययन न हो सके तो इन चारोंमें एक छोटा-सा किन्तु बड़ा ही उपादेय ग्रन्थ गीता है जिसे हम सबके कामकी चीज कह सकते हैं; उसीका अध्ययन करना चाहिये। गीताका अनुवाद अनेक भाषाओंमें हो चुका है। यह सार्वभौम ग्रन्थ है। जिसको किसी ग्रन्थविशेषका अध्ययन न करना हो वह गीताधर्मको ही अपना मार्गदर्शक बना सकता है। गीताधर्मका अर्थ संक्षेपमें इन शब्दोंमें किया जा सकता है—

(क) "सब कुछ भगवान्‌का समझकर सिद्धि-असिद्धिमें समभाव रखते हुए आसक्ति और फलकी इच्छाका त्यागकर भगवत्-आज्ञानुसार केवल भगवान्-

के लिये ही समस्त कर्मोंका आचरण करना तथा श्रद्धाभक्तिपूर्वक मन, वाणी और शरीरसे सब प्रकार भगवान्‌के शरण होकर उसके नाम, गुण और प्रभावयुक्त स्वरूपका निरन्तर चिन्तन करना। अथवा—

(ख) सम्पूर्ण पदार्थ मृगतृष्णाके जलकी तरह अथवा स्वप्नके संसारकी तरह मायामय होनेके कारण मायाके कार्यरूप सम्पूर्ण गुण ही गुणोंमें बर्तते हैं ऐसा समझकर मन, इन्द्रिय और शरीरद्वारा होनेवाले समस्त कर्मोंमें कर्तृत्वाभिमानसे रहित होकर, सर्वव्यापी सच्चिदानन्दघन परमात्माके स्वरूपमें एकीभावसे नित्य स्थित रहना। जिसमें एक सच्चिदानन्दघन परमात्माके अतिरिक्त अन्य किसीके भी अस्तित्वका भाव न रह जाय।"

यही गीताका निष्काम कर्मयोग और सांख्ययोग है, यही सार्वभौम धर्म है। इसके पालनमें सभी वर्ण और सभी जातियोंका समान अधिकार है। इसलिये—

(७) किसी दूसरेके धर्मपर किसी प्रकारका आक्षेप न कर ईर्ष्या, वैमनस्य और प्रतिहिंसा आदि कुभावोंको

परित्यागकर संसारमें सबको सुख पहुँचाते हुए विचरना चाहिये। जो लोग अपने धर्मको पूर्ण बताकर दूसरेके धर्मकी अपूर्णता सिद्ध करते हैं वे वास्तवमें परमात्माके तत्त्वको नहीं जानते। यदि मैं एक धर्मका विरोध करता हूँ, उस धर्मको भला-बुरा कहता हूँ तो दूसरेके द्वारा मुझे अपने धर्मके लिये भी वैसे ही अपशब्द सुनने पड़ते हैं। इससे मैं उसके साथ ही अपने धर्मका भी अपमान करता हूँ। क्योंकि ऐसा करनेमें मुझे अपने ईश्वरको और धर्मको सर्वव्यापी और सार्वभौम पदकी सीमासे संकुचित करना पड़ता है। किसी-न-किसी अंशमें सभी धर्मोंमें परमात्माका भाव विद्यमान है, अतएव किसी भी धर्मका तिरस्कार या अपमान करना अपने ही परमात्माका अपमान करना है।

अतएव जो मनुष्य धर्मके नामपर कलह और अशान्तिमूलक परस्परके कटु विवादोंमें न पड़कर गीताधर्मके अनुसार आचरण करता हुआ दम्भरहित होकर ईश्वरका पवित्र नाम लेता है और उस नामसे पाप करने, भोग प्राप्त करने एवं पाप नाश होनेकी भी कामना नहीं करता, वह बहुत ही शीघ्र काम, क्रोध, असत्य, व्यभिचार और कपट आदि सब दुर्गुणोंसे छूटकर अहिंसा, सत्य आदि

सात्त्विक गुणोंसे सम्पन्न हो जाता है, सांसारिक जड़ भोगों-से उसका मन हटकर सर्वदा ईश्वरके चिन्तनमें लग जाता है और इससे वह अपनी भावनाके अनुसार परमात्माके परम तत्त्वका और उसके स्वरूपका यथार्थ ज्ञान और प्रत्यक्ष दर्शन लाभकर कृतार्थ हो जाता है। परमात्माका नाम ऐसा विलक्षण है कि उसके स्मरण, उच्चारण और श्रवण-मात्रसे ही पापोंका नाश होता है। जो लोग स्वयं परमात्मा-का नाम-जप करते हैं, दूसरोंको सुनाते हैं, कहींपर बैठकर परमात्माके नामका गान करते हैं वे अपने कल्याणके साथ-ही-साथ संसारके अनेक जीवोंका बड़ा उपकार करते हैं। इसलिये सबको परमात्माके शुभ नामकी शरण लेकर स्वयं उसका स्मरण, जप और कीर्तन करना चाहिये और दूसरे लोगोंको प्रेमपूर्वक इस महान् कार्यमें लगाना चाहिये।